पर्टिकुलरली वल्नरेबल ट्राइबल ग्रुप्स (पीवीटीजीएस) विकास योजनाओं का कोरवा जनजाति के सामाजिक - आर्थिक जीवन पर प्रभावः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (गुमला जिला के चैनपुर एवं घाघरा प्रखण्ड के विशेष संदर्भ में)

पीएच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तावित शोध की रूपरेखा स्नातकोतर समाजशास्त्र विभाग, राँची विश्वविधालय, राँची (समाज विज्ञान संकाय)

शोध निर्देशक

डॉ. मिथिलेश कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर
स्नातकोतर समाजशास्त्र विभाग
राँची विश्वविधालय, राँची

शोधार्थी

गुलाम समदानी
शोध छात्र
स्नातकोतर समाजशास्त्र विभाग
राँची विश्वविधालय, राँची

2024

पर्टिकुलरली वल्नरेबल ट्राइबल ग्रुप्स (पीवीटीजीएस) विकास योजनाओं का कोरवा जनजाति के सामाजिक - आर्थिक जीवन पर प्रभावः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (गुमला जिला के चैनपुर एवं घाघरा प्रखण्ड के विशेष संदर्भ में)

1. शोध विषय की अधतन स्थिति

भारत की जनजातियाँ देश की समृद्ध सांस्कृतिक समृधि का एक महत्वपूर्ण और जीवंत खंड हैं। वे भारतीय उपमहाद्वीप में गहराई से निहित स्वदेशी समुदायों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो अपने विविध सांस्कृतिक, भाषाई और सामाजिक रीति–रिवाजों से प्रतिष्ठित हैं। ये विशिष्ट जनजातीय समूह मुख्य रूप से भारत भर के विशिष्ट क्षेत्रों में निवास करते हैं, पीढ़ियों से अपनी विशिष्ट पहचान और सदियों पुरानी परंपराओं को संरक्षित और कायम रखते हैं। इन स्वदेशी जनजातियों ने ऐतिहासिक रूप से अपने–अपने क्षेत्रों में निवास किया है, जिससे उनकी भूमि, संस्कृति और पारंपरिक प्रथाओं के साथ मजबूत संबंध कायम हुआ है। उनके पास जटिल सामाजिक संरचनाएं, जटिल विश्वास प्रणाली और भाषाएं हैं जो अक्सर उनके समुदाय के लिए अद्वितीय होती हैं, जो उन्हें भारत के भीतर विविध सांस्कृतिक विरासत के भंडार के रूप में अलग करती हैं।

भारत में ''जनजाति'' शब्द में कई समुदाय शामिल हैं, जिनमें से प्रत्येक की अपनी अलग जीवनशैली, सांस्कृतिक प्रथाएं और भाषाएं हैं। प्रसिद्ध मानवविज्ञानी वेरियर एल्विन ने इन जनजातियों को विशिष्ट भाषाओं, विश्वास प्रणालियों और सांस्कृतिक अनुष्ठानों वाले छोटे, एकजुट समूहों के रूप में वर्णित किया है। मानवविज्ञान के एक अन्य प्रमुख विद्वान क्रिस्टोफ वॉन फ्यूरर–हैमेंडॉर्फ ने सांस्कृतिक प्रथाओं, रिश्तेदारी प्रणालियों और स्वशासी इकाइयों के संदर्भ में आदिवासी समुदायों की विशिष्टता पर जोर दिया, और बड़े सामाजिक ढांचे के भीतर उनकी विशिष्ट पहचान पर जोर दिया।

राष्ट्रीय संदर्भ में, बी.एस. गुहा ने जनजातियों की सामाजिक–सांस्कृतिक विशिष्टता पर प्रकाश डाला, पर्यावरण के साथ उनके गहरे संबंधों और उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं में उनके द्वारा उपयोग की जाने वाली स्वायत्तता पर जोर दिया[1]। भारत की जनजातियों को मोटे तौर पर अनुसूचित जनजाति (एसटी) के

रूप में वर्गीकृत किया गया है, जिन्हें सरकार द्वारा विशेष विशेषाधिकार और सुरक्षा के लिए मान्यता प्राप्त है। ये समूह देश भर में कुल 700 से अधिक विशिष्ट जनजातियों सहित संस्कृतियों, भाषाओं और रीति–रिवाजों की समृद्ध विविधता को शामिल करते हैं[2]। वे पूर्वोत्तर राज्यों, मध्य भारत, पश्चिमी घाट और अंडमान और निकोबार द्वीप समूह सहित विभिन्न क्षेत्रों में निवास करते हैं, जो भारत की सांस्कृतिक पच्चीकारी में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। इन जनजातियों का जनसांख्यिकीय प्रतिनिधित्व भारत की आबादी का लगभग 8% है। विभिन्न राज्यों और क्षेत्रों में उनका फैलाव उनके समुदायों के भीतर मौजूद विशाल विविधता को दर्शाता है, प्रत्येक की अपनी अनूठी सामाजिक–सांस्कृतिक प्रथाओं, बोलियों, विश्वास प्रणालियों और आजीविका पैटर्न के साथ। अपनी परंपराओं में गहरी जड़ें जमाए ये जनजातियाँ भारत की सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

परंपरागत रूप से, कई आदिवासी समुदायों की आजीविका निर्वाह खेती, शिकार, संग्रह और कारीगर शिल्प के आसपास केंद्रित रही है। हालाँकि, वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण के साथ, कुछ जनजातियाँ वैकल्पिक आजीविका की ओर स्थानांतरित हो गई हैं[3]। उनके समाज आम तौर पर रिश्तेदारी–आधारित संबंधों के आसपास निर्मित समतावादी सामाजिक संरचनाओं का प्रदर्शन करते हैं, हालांकि विशिष्ट जनजातियों में निर्णय लेने के उद्देश्यों के लिए प्रमुख या परिषदें हो सकती हैं। फिर भी, इन समुदायों को असंख्य चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। विकास परियोजनाओं के कारण विस्थापन, पैतृक भूमि का नुकसान, शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और आर्थिक अवसरों तक अपर्याप्त पहुंच जैसे मुद्दे उनकी भलाई और विकास में महत्वपूर्ण बाधाएं पैदा करते हैं। जनजातीय समुदायों के अधिकारों और हितों की रक्षा के लिए, भारतीय संविधान अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष प्रावधान प्रदान करता है। इनमें विधायी निकायों में आरक्षित सीटें और शिक्षा और रोजगार में सकारात्मक कार्रवाई नीतियां शामिल हैं। इसके अलावा, सरकार ने विशेष रूप से आदिवासी समुदायों के लिए स्वास्थ्य देखभाल, शिक्षा, बुनियादी ढांचे और आजीविका विकास पर केंद्रित विभिन्न कल्याणकारी योजनाएं और कार्यक्रम

लागू किए हैं। भारत की जनजातियों को समझने में उनके सामने आने वाली सामाजिक–आर्थिक चुनौतियों का समाधान करते हुए उनकी सांस्कृतिक समृद्धि को पहचानना और उसका जश्न मनाना शामिल है। उनकी पहचान को संरक्षित करना, शिक्षा और सतत विकास के माध्यम से उन्हें सशक्त बनाना और भारत के विविध सामाजिक ढांचे के भीतर उनके समावेशी विकास को सुनिश्चित करना अधिक न्यायसंगत और सामंजस्यपूर्ण भविष्य के लिए महत्वपूर्ण है।

जनजाति की परिभाषा एवं वर्गीकरण

किसी जनजाति के गठन को परिभाषित करने में चल रही चुनौती ने प्रशासनिक प्रयासों को लगातार बाधित किया है। मानवविज्ञानियों और समाजशास्त्रियों ने इस स्थायी मुद्दे के समाधान की खोज में विभिन्न परिभाषाएँ प्रस्तावित करने का प्रयास किया है।

मानवविज्ञान शब्दकोष एक जनजाति को एक सामाजिक इकाई के रूप में चित्रित करता है जो आमतौर पर एक परिभाषित भौगोलिक क्षेत्र, विशिष्ट भाषा, सांस्कृतिक सुसंगतता और एक सामंजस्यपूर्ण सामाजिक संरचना द्वारा विशेषता होती है। इसमें अक्सर सिब या गाँव जैसे कई उपसमूह शामिल होते हैं। एक जनजाति में आम तौर पर एक नेता होता है और संरक्षक देवता के प्रति श्रद्धा के साथ–साथ इसकी उत्पत्ति एक साझा पूर्वज से हो सकती है। जनजाति के भीतर परिवार या छोटे समुदाय आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, पारिवारिक या रक्त संबंधों के माध्यम से एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।

डी.एन. मजूमदार के अनुसार[4], जनजातियों में ऐसे परिवार या परिवारों के समूह शामिल होते हैं जो एक सामूहिक पहचान साझा करते हैं, अक्सर एक सामान्य नाम रखते हैं, एक ही भौगोलिक क्षेत्र के भीतर रहते हैं, एक सामान्य भाषा साझा करते हैं, और विवाह, व्यवसायों, से संबंधित विशिष्ट सांस्कृतिक मानदंडों का पालन करते हैं। इन समूहों ने एक संरचित प्रणाली भी तैयार की है जो उनके सदस्यों के बीच पारस्परिक संबंधों और पारस्परिक दायित्वों पर जोर देती है।

बोगार्डस जनजातियों को सुरक्षा की मूलभूत आवश्यकता के इर्द–गिर्द बनी सामाजिक संस्थाओं के रूप में चित्रित करता है, जो पारिवारिक संबंधों पर आधारित होती हैं, और एक साझा धार्मिक विश्वास प्रणाली के सामूहिक पालन से मजबूत होती हैं[5]।

कमलादेवी चट्टोपाध्याय एक जनजाति को एक सामाजिक इकाई के रूप में वर्णित करती हैं जो आमतौर पर एक विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र, एक विशिष्ट भाषा, सांस्कृतिक सामंजस्य और एक सामंजस्यपूर्ण सामाजिक संरचना की विशेषता होती है। ये जनजातियाँ अक्सर अपने ढांचे में विभिन्न उप–समूहों को शामिल करती हैं[6]।

भारत में जनजातीय जनसंख्या का वर्गीकरण

विश्लेषण और अनुसंधान की सुविधा के लिए, भारत के जनजातीय समुदायों को विभिन्न मानदंडों के आधार पर व्यवस्थित रूप से वर्गीकृत किया गया है।

वर्गीकरण का प्रारंभिक आधार भौगोलिक या क्षेत्रीय वितरण पर आधारित है। यह वर्गीकरण अलग–अलग क्षेत्रों पर विचार को रेखांकित करता है।

उत्तर–पूर्वी क्षेत्रः–

इस क्षेत्र में असम, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, नागालैंड और त्रिपुरा शामिल हैं, जिसमें विभिन्न प्रकार की जनजातियाँ शामिल हैं। इनमें गारो, कुकी, मिजो, खासी, मोंडा, सेर्ना, नागा, रियांग, मिरी, अपातानी और कई अन्य शामिल हैं, जिनमें से प्रत्येक समुदाय अपनी समृद्ध सांस्कृतिक पहचान में योगदान देता है[7]।

मध्य और पूर्वी भारतः

यह विस्तृत क्षेत्र पश्चिम बंगाल, बिहार, झारखण्ड, ओडिशा, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश तक फैला हुआ है, जो जनजातियों की समृद्ध विरासत का दावा करता है। इस क्षेत्र में रहने वाले विविध समूहों में बैगा, बोंडो, जोआंग, कोल, खोंड, कोरवा, संथाल, उराँव, हो, मुंडा, लेप्चा, कोरवा, भील, पहाड़िया और कई अन्य समूह

शामिल हैं, जिनमें से प्रत्येक इस जीवंतता में विशिष्ट सांस्कृतिक विरासत में योगदान दे रहे हैं[8]।

दक्षिण भारतः

तमिलनाडु, केरल, आंध्र प्रदेश और कर्नाटक राज्यों को शामिल करते हुए, यह क्षेत्र असंख्य जनजातियों का घर है, जिन्होंने इसके सांस्कृतिक ताने–बाने को आकार दिया है। यहां रहने वाली महत्वपूर्ण जनजातियों में टॉड, कोल, कादर, चेंचू, कोया, गोंड, चोलानाइकेन, गोदाबा और बहुत कुछ शामिल हैं, जिनमें से प्रत्येक इस जीवंत क्षेत्र की समृधि में अपनी अनूठी परंपराओं और विरासत का योगदान दे रहे हैं[9]।

पश्चिमी भारतः

राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र राज्यों को शामिल करते हुए, यह क्षेत्र कई जनजातियों द्वारा पोषित विविध संस्कृतियों और परंपराओं का एक संग्रह है। इनमें भील, गनासिया, गोंड, कोलम, परधान, कोरकू, कोली, ठाकर, कटकरी, वारली, पावरा, मुंडा, कोल, खोंड, दुबला और कई अन्य शामिल हैं, जिनमें से प्रत्येक ने समृद्ध सांस्कृतिक पच्चीकारी में अपने विशिष्ट रीति–रिवाजों और विरासत का योगदान दिया है।

जनजातीय विकास कार्यक्रम और कल्याण योजनाएँ

जनजातीय समुदायों के सामने आने वाली असंख्य चुनौतियों से निपटने के लिए, इन समुदायों के भीतर विविध चिंताओं और दृष्टिकोणों को स्वीकार करते हुए, जनजातीय विकास के लिए विभिन्न रणनीतियाँ शुरू की गईं। जनजातीय मुद्दों के बहुमुखी आयामों को संबोधित करने के उद्देश्य से, ये प्रयास अलग–अलग चरणों में, अलग–अलग दृष्टिकोणों द्वारा चिह्नित किए गए।

स्वतंत्रता–पूर्वः ब्रिटिश औपनिवेशिक युग के दौरान, आदिवासी समुदायों की दुर्दशा को कम करने और उन्हें साहूकारों और व्यापारियों जैसी बाहरी ताकतों के शोषण से बचाने के लिए एक विशिष्ट पद्धति अपनाई गई थी। यह दृष्टिकोण मुख्य

रूप से राहत प्रदान करने पर केंद्रित था और अलगाव की ओर झुका हुआ था, जिसका उद्देश्य भावनात्मक आधार पर व्यापक आबादी से जानबूझकर अलगाव को बढ़ावा देकर जनजातीय क्षेत्रों में प्रशासन को सुव्यवस्थित करना था। हालाँकि, इसका कारण उनके आर्थिक बुनियादी ढांचे को मजबूत करने पर नहीं बल्कि औपनिवेशिक शासकों के राजनीतिक और आर्थिक हितों को पूरा करने पर था। यह इरादा उनकी वन नीतियों में स्पष्ट था, जिसने आदिवासी भूमि पर भू–राजस्व लगाया और भूमि हस्तांतरण रणनीतियों का समर्थन किया। जबकि मुट्ठी भर मिशनरियों और स्वैच्छिक समूहों ने स्वतंत्र रूप से आदिवासी कल्याण की दिशा में काम किया, कुछ ईसाई मिशनरियों ने धर्मांतरण प्रथाओं में लगे हुए, उस युग के दौरान अनजाने में चुनिंदा आदिवासी समूहों के बीच शिक्षा और विकास की शुरुआत की।

स्वतंत्रता के बादः स्वतंत्रता के बाद, विकासात्मक योजनाओं के दायरे में आदिवासी समुदायों के उपेक्षित किये जाने के संबंध में एक गहरा एहसास सामने आया, जिससे ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता महसूस हुई। परिणामस्वरूप, विकासोन्मुख रणनीति की ओर एक आदर्श बदलाव आया। सरकार ने अपने प्रयासों को इन समुदायों की सामाजिक–आर्थिक प्रगति को बढ़ावा देने पर केंद्रित किया, कुछ क्षेत्रों को ''अनुसूचित क्षेत्रों'' के रूप में नामित किया जहां आदिवासी आबादी 50% से अधिक थी। एक निर्दिष्ट समय सीमा के भीतर इन जनजातियों के विकास पथ को सुव्यवस्थित करने के लिए एक व्यापक खाका सावधानीपूर्वक तैयार किया गया था, जिसमें व्यक्तिगत आवश्यकताओं और पूर्वानुमानित प्रभावों के आधार पर मैक्रो, मेसो या माइक्रो स्तरों पर सटीक निवेश शामिल थे[10]।

जनजातीय समुदायों के सामने आने वाली चुनौतियों से निपटना एक कठिन और समय लेने वाला कार्य है। आंतरिक और बाहरी हस्तक्षेप दोनों के माध्यम से विकासात्मक बदलाव की खोज, परिकल्पित दृष्टिकोण बनी हुई है। यह सरकारी निकायों और गैर–सरकारी संगठनों से बाहरी समर्थन की अपेक्षा के साथ–साथ इन समुदायों के भीतर स्थिति को सुधारने के आंतरिक दृढ़ संकल्प पर निर्भर करता है। उत्तरार्द्ध, जिसे ''बाहर से परिवर्तन'' कहा जाता है, इस प्रक्रिया में महत्वपूर्ण हो

जाता है। यह बाहरी सहायता, मुख्य रूप से पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से, महत्वपूर्ण रणनीतियों को रेखांकित करती है:[11]

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951–56) में सामुदायिक विकास पर जोर दिया गया, जिसमें लोगों को उनकी सांस्कृतिक अखंडता का सम्मान करते हुए उनके जीवन को बेहतर बनाने के लिए गैर–आक्रामक नवाचारों को अपनाने की प्रक्रिया में प्रेरित करने और शामिल करने पर ध्यान केंद्रित किया गया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956–61) में, 43 विशेष बहुउद्देश्यीय जनजातीय ब्लॉक (बाद में जनजातीय विकास ब्लॉक के रूप में जाने गए) स्थापित किए गए, जो जनजातीय विकास की दिशा में एक केंद्रित प्रयास को दर्शाते हैं।

तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961–66) ने खाद्य उत्पादन को लक्षित किया और व्यक्तिगत कृषि–फसल उत्पादन योजनाओं की अवधारणा पेश की। जनजातीय विकास खंडों पर विशेष ध्यान दिया गया, जिसका लक्ष्य 60% से अधिक जनजातीय आबादी वाले क्षेत्रों में कार्यान्वयन करना है।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969–74) ने पिछली प्राथमिकताओं को बरकरार रखा लेकिन आदिवासी शिशुओं की पोषण संबंधी जरूरतों को पूरा करने और रोजगार के अवसर पैदा करने के लिए क्रैश स्पेशल न्यूट्रिशन और रोजगार कार्यक्रम जैसे विशिष्ट कार्यक्रम पेश किए। इसके अतिरिक्त, जनजातीय मुद्दों के समाधान के लिए जनजातीय विकास एजेंसियां (टीडीए) जैसी एजेंसियां स्थापित की गईं।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974–79) ने जनजातीय उप–योजना योजना के तहत परियोजनाएं तैयार करते समय जनजातीय जनसांख्यिकी, पारिस्थितिकी, जीवन शैली और संस्कृति पर विचार करते हुए एक एकीकृत क्षेत्र विकास दृष्टिकोण का उपयोग किया। जनजातीय और गैर–आदिवासी क्षेत्रों के बीच विकासात्मक असमानताओं को कम करने और रणनीतिक निवेश के लिए विकास केंद्रों की पहचान करने पर ध्यान केंद्रित किया गया था।

छठी पंचवर्षीय योजना (1980–85) में, अधिक व्यापक कवरेज और लक्षित विकास के लक्ष्य के साथ, छोटे क्षेत्रों में आदिवासी आबादी को पूरा करने के लिए एक संशोधित क्षेत्र विकास दृष्टिकोण (एमएडीए) अपनाया गया था।

जनजातीय समुदायों की भलाई को बढ़ाने के लिए समय–समय पर कई रणनीतियों को अपनाया गया है, फिर भी इन समूहों के लिए व्यापक और न्यायसंगत सामाजिक–आर्थिक प्रगति प्राप्त करने का उद्देश्य मायावी बना हुआ है। इस लक्ष्य को पूरा करने में विफलता को कई प्रमुख कारकों के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है जैसे वास्तविक जनजातीय परिप्रेक्ष्य से रहित योजनाओं और रणनीतियों को क्रियान्वित करने की प्रवृत्तिय जनजातियों द्वारा निवास किए गए विविध भौगोलिक क्षेत्रों की अपर्याप्त स्वीकृति, प्रत्येक विशिष्ट प्राकृतिक संसाधन, सांस्कृतिक गतिशीलता, आर्थिक संरचनाय लाभार्थियों के बीच प्रतिक्रिया के विभिन्न स्तर और आदिवासी नेतृत्व की क्षमताएंय धन की कमी और पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित और कुशल कर्मियों की कमी इन चुनौतियों को और बढ़ा देती है।

पर्टिकुलरली वल्नरेबल ट्राइबल ग्रुप्स (पीवीटीजीएस)

पर्टिकुलरली वल्नरेबल ट्राइबल ग्रुप्स संक्षिप्त नाम पीवीटीजीएस विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह को दर्शाता है, जो महत्वपूर्ण सामाजिक–आर्थिक स्थिरता, कम साक्षरता स्तर और घटती जनसंख्या प्रवृत्तियों का सामना करने वाले विशिष्ट जनजातीय समुदायों के लिए भारत सरकार द्वारा स्वीकृत एक वर्गीकरण है[12]। इन समूहों को देश के अन्य आदिवासी समुदायों की तुलना में असाधारण रूप से कमजोर और उपेक्षित रहने वाले के रूप में पहचाना जाता है। भारत कुल 75 विशिष्ट पीवीटीजी को मान्यता देता है, जिनमें से प्रत्येक इन चुनौतियों का सामना करने वाले अद्वितीय समुदायों का प्रतिनिधित्व करता है[13]। पीवीटीजी के उदाहरणों में अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में जारवा, सेंटिनलीज और ओंगे, झारखंड में कोरवा, बिरहोर और खारिया, साथ ही केरल में पनिया और कुरुम्बा जैसी जनजातियाँ शामिल हैं। ये समुदाय अपनी बढ़ती असुरक्षा के कारण अलग नजर

आते हैं और पूरे भारत में अन्य जनजातीय समूहों की तुलना में अलग सामाजिक–आर्थिक बाधाओं का सामना करते हैं।

1973 में, ढेबर आयोग ने विशिष्ट अविकसित जनजातीय समुदायों की विशिष्ट आवश्यकताओं को उजागर करने और उन्हें पूरा करने के लिए आदिम जनजातीय समूहों (पीटीजी) का वर्गीकरण शुरू किया[14]। बहरहाल, एक अधिक संवेदनशील और व्यापक शब्द की आवश्यकता को पहचानते हुए, भारत सरकार ने 2006 में एक परिवर्तनकारी परिवर्तन का विकल्प चुना, पीटीजी का नाम बदलकर विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह (पीवीटीजी) कर दिया[15]। शब्दावली में यह परिवर्तन इन समुदायों द्वारा सहन की गई कमजोरियों की गहरी समझ का प्रतीक है, जो उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति को सशक्त बनाने और ऊंचा उठाने के उद्देश्य से लक्षित कल्याण हस्तक्षेपों की तात्कालिकता को रेखांकित करता है।

विकास योजनाएं

भारत में विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूहों पर्टिकुलरली वल्नरेबल ट्राइबल ग्रुप्स (पीवीटीजीएस) के लिए विकास योजनाएं इन समुदायों के सामने आने वाली अनूठी चुनौतियों के कारण महत्वपूर्ण हैं। विकास योजनाओं की आवश्यकता पीवीटीजी द्वारा सामना की जाने वाली गंभीर कमजोरियों से उत्पन्न होती है। इन समुदायों को अक्सर अलगाव, सामाजिक–आर्थिक पिछड़ेपन, कम साक्षरता दर, अपर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाओं, भूमि अलगाव और पारंपरिक आजीविका के नुकसान का सामना करना पड़ता है। उनकी हाशिये की स्थिति को देखते हुए, सामान्य विकास कार्यक्रम उनकी विशिष्ट चुनौतियों का पर्याप्त रूप से समाधान नहीं कर सकते हैं। इस प्रकार, इन जनजातियों के बीच समावेशी विकास और सशक्तिकरण सुनिश्चित करने के लिए अनुरूप हस्तक्षेप की आवश्यकता स्पष्ट हो गई।

भारत में पर्टिकुलरली वल्नरेबल ट्राइबल ग्रुप्स (पीवीटीजीएस) के लिए विकास योजनाओं की यात्रा 1973 में ढेबर आयोग के साथ शुरू हुई, जिसने अविकसित जनजातियों की जरूरतों को पहचानने और संबोधित करने के लिए आदिम जनजातीय समूहों (पीटीजी) की श्रेणी की शुरुआत की। हालाँकि, समय के साथ,

यह स्पष्ट हो गया कि ''आदिम'' शब्द का औपनिवेशिक अर्थ है और यह उस गरिमा और सम्मान को प्रतिबिंबित नहीं करता जिसके ये समुदाय हकदार थे। 2006 में, भारत सरकार ने अधिक समावेशी और सम्मानजनक नामकरण के महत्व को पहचाना और आधिकारिक तौर पर पीटीजी का नाम बदलकर विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह पर्टिकुलरली वल्नरेबल ट्राइबल ग्रुप्स (पीवीटीजीएस) कर दिया। शब्दावली में इस बदलाव ने नीतिगत विमर्श में एक महत्वपूर्ण बदलाव को चिह्नित किया, जिसमें इन समुदायों द्वारा सामना की जाने वाली कमजोरियों को स्वीकार करने और संबोधित करने के प्रति अधिक संवेदनशील दृष्टिकोण पर जोर दिया गया।

पर्टिकुलरली वल्नरेबल ट्राइबल ग्रुप्स (पीवीटीजीएस) को समर्पित योजनाओं का कालक्रम उनके विकास के लिए नीतिगत उपायों के विकास को दर्शाता हैः

केंद्रित कल्याण योजनाएंः समय के साथ, सरकार ने जनजातीय उप–योजना (एससीए से टीएसएस) के लिए विशेष केंद्रीय सहायता जैसी केंद्रित कल्याणकारी योजनाएं शुरू कीं, जो विशिष्ट वित्तीय आवंटन के साथ सीधे पीवीटीजी को लक्षित करती थीं।

पर्टिकुलरली वल्नरेबल ट्राइबल ग्रुप्स (पीवीटीजीएस) विकास योजनाएंः जैसे–जैसे पीवीटीजी की दुर्दशा के बारे में जागरूकता बढ़ी, सरकार ने स्वास्थ्य देखभाल, शिक्षा, आजीविका और बुनियादी ढांचे पर ध्यान केंद्रित करते हुए पीवीटीजी–विशिष्ट विकास योजनाएं तैयार कीं।

वनबंधु कल्याण योजनाः 2014 में शुरू की गई इस योजना का उद्देश्य पीवीटीजी सहित आदिवासी समुदायों के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा, आजीविका और बुनियादी ढांचे का व्यापक विकास करना है[16]।

आजीविका संवर्धन के लिए कार्यक्रमः पीवीटीजी की आवश्यकताओं के अनुरूप कौशल विकास, कृषि, पशुपालन और वन–आधारित उद्यमों सहित विभिन्न आजीविका संवर्धन कार्यक्रम लागू किए गए हैं।

जनजातीय अनुसंधान संस्थानों को मजबूत करना: अनुसंधान और दस्तावेजीकरण महत्वपूर्ण रहे हैं, जो पीवीटीजी की सामाजिक–सांस्कृतिक गतिशीलता को समझने और अधिक प्रभावी हस्तक्षेप तैयार करने में सहायता करते हैं।

ये योजनाएं और पहल उनके सामाजिक–आर्थिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक संदर्भों पर विचार करते हुए पीवीटीजी विकास के प्रति समग्र दृष्टिकोण के महत्व पर जोर देती हैं। इसके अलावा, विभिन्न राज्य सरकारों ने भी पीवीटीजी के उत्थान के उद्देश्य से क्षेत्र–विशिष्ट कार्यक्रम शुरू किए हैं। उदाहरण के लिए, ओडिशा, झारखंड, केरल और आंध्र प्रदेश जैसे राज्यों ने शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल, बुनियादी ढांचे और पीवीटीजी की अनूठी सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने पर ध्यान केंद्रित करते हुए राज्य–स्तरीय योजनाएं लागू की हैं। इन योजनाओं के कार्यान्वयन में दूरदराज के क्षेत्रों में अपर्याप्त बुनियादी ढांचे, इन अलग–थलग समुदायों तक पहुंचने में कठिनाई, सांस्कृतिक संरक्षण चिंताओं के कारण परिवर्तन का प्रतिरोध और निरंतर धन और निगरानी तंत्र की आवश्यकता जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ा है।

कोरवा जनजाति

कोरवा जनजाति समूह, भारत में मुंडा समुदाय का हिस्सा, मुख्य रूप से छत्तीसगढ़ और झारखंड के सीमावर्ती क्षेत्रों में रहता है, जबकि एक छोटा समूह उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले में रहता है। उनकी जरूरतों को पहचानते हुए, भारत सरकार ने कोरवा आबादी का समर्थन करने के लिए विभिन्न उपाय किए हैं, जिसमें उनकी बस्तियों को जोड़ने के लिए सड़कों का निर्माण, शिक्षा की सुविधा के लिए लड़कों के छात्रावासों की स्थापना और कृषि सहायता का प्रावधान शामिल है। इन हस्तक्षेपों के बावजूद, कोरवा मुख्य रूप से अपनी सांस्कृतिक विरासत और प्रथाओं को अपनाते हुए, अपनी पारंपरिक शिकारी–संग्रहकर्ता जीवन शैली को बनाए रखते हैं। कोरवा जनजाति के भीतर, अलग–अलग उपविभाजन मौजूद हैं, जो विविध सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान को रेखांकित करते हैं। ये उपविभाजन, अर्थात्

अगरिया, डांध, दिल और पहाड़ी कोरवा, अपने अद्वितीय रीति–रिवाजों और परंपराओं के साथ कोरवा समाज की विविधता में योगदान करते हैं।

कोरवा आबादी का अधिकांश हिस्सा, जिनकी कुल संख्या 129,429 है, उत्तरपूर्वी छत्तीसगढ़ में रहती है, जबकि एक महत्वपूर्ण अल्पसंख्यक, जिनकी संख्या 35,606 है, पश्चिमी झारखंड में रहती है। उत्तर प्रदेश में, कोरवा समुदाय मुख्य रूप से मिर्जापुर और सोनभद्र के दक्षिणी जिलों में रहता है, जो पहाड़ी, जंगली और लहरदार इलाकों में रहते हैं। कोरवा जनजाति की धार्मिक प्रथाएँ सतबहिनी देवी की पूजा पर केंद्रित हैं, पहाड़िया कोरवा को चार सेप्टों में विभाजित किया गया हैः हेज्दा, समति, एडिखर और मदीखर, इन समूहों के बीच अंतर्विवाह और सांप्रदायिक भोजन की अनुमति देते हैं। कोरवा लोग मुख्य रूप से कोरवा भाषा में संवाद करते हैं, जिसे एरंगा या सिंगली के नाम से भी जाना जाता है, जबकि वे इसे अपनी भाषा के रूप में संदर्भित करते हैं, जो उनके सांस्कृतिक संदर्भ में ''स्थानीय भाषा'' को दर्शाता है। यह भाषाई पहचान उनकी विशिष्ट विरासत और सांस्कृतिक जड़ों का प्रतीक है, जो उनकी समृद्ध मौखिक परंपराओं और स्वदेशी ज्ञान को दर्शाती है[17]।

झारखण्ड एवं गुमला जिला

पूर्वी भारत में स्थित झारखंड एक ऐसा राज्य है जो अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत, हरे–भरे परिदृश्य और विविध आदिवासी समुदायों के लिए जाना जाता है। यह वर्ष 2000 में बिहार से अलग होकर भारत का 28वां राज्य बना। राज्य खनिजों, वनों और जल निकायों सहित प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर है, जो इसकी अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देता है। गुमला झारखंड के प्रमुख जिलों में से एक है, जो राज्य के दक्षिणी भाग में स्थित है। इसकी विशेषता इसकी प्राकृतिक सुंदरता है, जिसमें पहाड़ियाँ, जंगल और नदियाँ शामिल हैं। गुमला जिला अपनी जीवंत आदिवासी संस्कृति के लिए प्रसिद्ध है और यह कई स्वदेशी समुदायों का घर है, जिनमें से प्रत्येक की अपनी विशिष्ट रीति–रिवाज, परंपराएं और भाषाएं हैं। गुमला जिले के भीतर, चौनपुर और घाघरा ब्लॉक महत्वपूर्ण प्रशासनिक प्रभाग हैं।

इन ब्लॉकों में कई गांव और बस्तियां शामिल हैं, जिनमें मुख्य रूप से आदिवासी समुदाय रहते हैं, जो जिले के सांस्कृतिक ताने–बाने की रीढ़ हैं।

पर्टिकुलरली वल्नरेबल ट्राइबल ग्रुप्स**,** विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह (पीवीटीजीएस) ऐसे समुदाय हैं जिन्हें सरकार द्वारा विभिन्न सामाजिक–आर्थिक और सांस्कृतिक कारकों के कारण असाधारण रूप से कमजोर माना जाता है। इन समूहों को गंभीर हाशिए पर रहने, अलगाव और बुनियादी सुविधाओं तक पहुंच की कमी का सामना करना पड़ता है। गुमला जिले के चौनपुर और घाघरा ब्लॉक में, कई पीवीटीजी निवास करते हैं, जो आजीविका, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा और बुनियादी ढांचे से संबंधित चुनौतियों से जूझ रहे हैं। इन ब्लॉकों में पीवीटीजी अक्सर पारंपरिक जीवनशैली अपनाते हैं और जीविका के लिए वन संसाधनों, कृषि और हस्तशिल्प पर निर्भर रहते हैं। उनके पास अद्वितीय सांस्कृतिक पहचान और स्वदेशी ज्ञान प्रणालियाँ हैं, जो उनके जीवन के अभिन्न अंग हैं। हालाँकि, विभिन्न विकासात्मक बाधाओं और ऐतिहासिक हाशिए पर रहने के कारण, ये समुदाय अक्सर सामाजिक–आर्थिक असमानताओं, शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और अन्य बुनियादी सुविधाओं तक सीमित पहुंच का अनुभव करते हैं। सरकार और गैर–सरकारी संगठनों के प्रयासों को इन ब्लॉकों में पीवीटीजीएस के उत्थान और कल्याण की दिशा में निर्देशित किया गया है। उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं को संबोधित करने के लिए विभिन्न विकासात्मक योजनाएं और कार्यक्रम लागू किए जाते हैं, जिनका लक्ष्य उनके जीवन स्तर में सुधार करना, शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल तक पहुंच प्रदान करना और स्थायी आजीविका के अवसर पैदा करना है। इन हस्तक्षेपों में शैक्षिक बुनियादी ढांचे के विकास, स्वास्थ्य सेवा, कौशल विकास कार्यक्रम और उनकी सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण पर केंद्रित पहल शामिल हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और कौशल वृद्धि के माध्यम से इन समुदायों को सशक्त बनाकर, उनकी अद्वितीय सांस्कृतिक पहचान और पारंपरिक प्रथाओं का सम्मान और संरक्षण करते हुए उन्हें मुख्यधारा में एकीकृत करने का प्रयास किया जाता है। हालाँकि, इन पहलों के बावजूद चुनौतियाँ बरकरार हैं। दूरदराज के इलाकों में सीमित बुनियादी ढांचा, अपर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाएं, शिक्षा तक पहुंच में कठिनाइयां, भूमि अधिकार के मुद्दे

और पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण कुछ ऐसी बाधाएं हैं जो गुमला जिले के चौनपुर और घाघरा ब्लॉक में पीवीटीजीएस के समग्र विकास में बाधा बनी हुई हैं।

साहित्य समीक्षा

साहित्य की व्यापक समीक्षा किसी शोध सारांश के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह किसी विशिष्ट क्षेत्र या विषय के भीतर मौजूदा ज्ञान परिदृश्य का एक मनोरम दृश्य प्रदान करके आधारशिला के रूप में कार्य करता है। विभिन्न विद्वतापूर्ण कार्यों, अध्ययनों और प्रकाशनों में तल्लीन होकर, शोधकर्ता विषय वस्तु की गहरी समझ हासिल करते हैं। यह समझ उनके प्रस्तावित शोध के महत्व को प्रासंगिक बनाने के लिए महत्वपूर्ण है। साहित्य समीक्षा एक कम्पास के रूप में कार्य करती है, जो शोधकर्ताओं को ज्ञान के मौजूदा निकाय के भीतर अंतराल, विसंगतियों या अनसुलझे मुद्दों की पहचान करने के लिए मार्गदर्शन करती है। ये अंतराल केंद्र बिंदु बन जाते हैं जो शोध प्रश्नों या परिकल्पनाओं के निर्माण को प्रेरित करते हैं। इसके अतिरिक्त, पूर्व अध्ययनों का गंभीर विश्लेषण करके, शोधकर्ता अपनी कार्यप्रणाली को परिष्कृत कर सकते हैं, वैकल्पिक दृष्टिकोण तलाश सकते हैं, या अपने स्वयं के अनुसंधान प्रयासों की मजबूती और नवीनता को बढ़ाने के लिए मौजूदा ढांचे को अनुकूलित कर सकते हैं। इसलिए, साहित्य की सावधानीपूर्वक समीक्षा न केवल उस आधार को स्थापित करती है जिस पर शोध सारांश खड़ा होता है, बल्कि प्रस्तावित अध्ययन की दिशा और प्रासंगिकता को आकार देने में भी सहायता मिलती है, जिससे क्षेत्र में ज्ञान की उन्नति में इसका योगदान सुनिश्चित होता है। प्रस्तुत शोध सारांश के लिए मैंने बहुत सारे पुस्तकों, शोध पत्रों एवं जर्नल का अध्ययन किया उनमे से कुछ निम्न हैंः–

हरिश्चन्द्र उप्रेति (2000)[18] भारतीय जनजातियों पर केंद्रित पुस्तक भारत भर में समृद्ध सांस्कृतिक विविधता, सामाजिक–आर्थिक संरचनाओं, ऐतिहासिक संदर्भों और विभिन्न जनजातीय समुदायों के विकास पथ का पता लगाती हैं। पुस्तक जनजातीय समाज की पारंपरिक शासन प्रणालियों, सांस्कृतिक प्रथाओं, विश्वास प्रणालियों और समकालीन समय में उनकी विकसित होती सामाजिक–राजनीतिक गतिशीलता का

विश्लेषण करती है। ये पुस्तक जनजातीय समुदायों के सामने आने वाली चुनौतियों पर प्रकाश डालती हैं, जिनमें भूमि अधिकार, विस्थापन, हाशिए पर जाने और आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण के बीच उनकी अद्वितीय सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने के प्रयासों से संबंधित हैं।

गिरिजा प्रसाद दुबे (2010)[19] इसमें लेखक ने जनजातियों का मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। लेखक ने जनजातियों के बहुमुखी पहलुओं पर प्रकाश डालने की कोशिश की है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न जनजातियों की सांस्कृ तिक विविधता, सामाजिक संरचनाओं, रिश्तेदारी प्रणालियों, रीति–रिवाजों, भाषाओं, परंपराओं और ऐतिहासिक संदर्भों का पता लगाती हैं। वे सामाजिक–आर्थिक कारकों, राजनीतिक प्रणालियों और इन समुदायों पर आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण और सरकारी नीतियों के प्रभाव से संबंधित जनजातीय समाजों के भीतर बदलती गतिशीलता की भी जांच करते हैं। गिरिजा प्रसाद दुबे, जो मानव विज्ञान में अपने योगदान के लिए जाने जाते हैं, भारतीय जनजातियों के मानवशास्त्रीय आयामों में विद्वतापूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। उनकी पुस्तक विशिष्ट जनजातियों के नृवंशविज्ञान प्रोफाइल पर चर्चा करती है, उनके निर्वाह पैटर्न, सामाजिक संगठन, धार्मिक विश्वासों, अनुष्ठानों और प्रथागत प्रथाओं की जांच करती है।

अजय प्रताप, बिंदा परांजपे, घनश्याम (2023)[20], यह पुस्तक भारत की जनजातियों और पर्यावरण के साथ उनके संबंधों पर चर्चा करने वाले 16 शोध लेखों पर केंद्रित है। भारत की मूल जनजातियों और उनके पर्यावरणीय संबंधों पर ध्यान केंद्रित करते हुए, यह इन समुदायों के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और पारिस्थितिक पहलुओं में मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। जनजातियों और उनके पर्यावरण के बीच संबंधों को समझना स्थिरता, पारंपरिक ज्ञान, संरक्षण प्रथाओं और इन समुदायों पर आधुनिकीकरण के प्रभाव पर महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रदान करता है।

जनक सिंह मीना, कुलदीप सिंह मीना (2018)[21] पुस्तक एक व्यापक संग्रह है जिसमें भारत के जनजातीय समुदायों द्वारा सामना की जाने वाली चुनौतियों और अवसरों पर केंद्रित 23 शोध लेख शामिल हैं। प्रत्येक लेख इन समुदायों से संबंधित

अलग–अलग पहलुओं पर प्रकाश डालता है, उनके सामने आने वाले बहुमुखी मुद्दों और उनकी संभावनाओं की खोज करता है। इस संकलन की संरचना उन सामाजिक–आर्थिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय परिदृश्यों का एक मनोरम दृश्य प्रस्तुत करने के लिए की गई है, जिनमें ये जनजातियाँ मौजूद हैं।

अर्जुन कुमार श्रीवास्तव (2020)[22] इसमें लेखक भारत में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के कर्तव्यों और अधिकारों से जुड़े महत्वपूर्ण विषयों की पड़ताल करता है। सामाजिक संरचना के जटिल ताने–बाने में गहराई से उतरते हुए, यह पुस्तक जाति व्यवस्था की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की जांच करती है, खासकर वैदिक युग में, और यह स्पष्ट करती है कि इसने समकालीन समय में देखे जाने वाले स्तरीकृत समाज की नींव कैसे रखी। यह भारतीय समाज के सामाजिक–आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्रों पर इसके प्रभाव को उजागर करते हुए, जाति व्यवस्था के विकास पर चर्चा करता है। इसके अलावा, पाठ संभवतः भारतीय जनजातियों के अधिकारों की रक्षा करने वाले संवैधानिक प्रावधानों और कानूनी ढांचे के माध्यम से दिशा प्रदान करता है, जो भारतीय संविधान में निहित अनुसूचित जनजातियों के कल्याण और सशक्तिकरण के लिए तैयार किए गए विशिष्ट कानूनों और नीतियों पर प्रकाश डालता है।

विजय प्रकाश शर्मा (2022)[23] पुस्तक भारतीय सामाजिक ढांचे के भीतर विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूहों (पीवीटीजी) के सामने आने वाली चुनौतियों और अद्वितीय परिस्थितियों का एक व्यावहारिक विश्लेषण प्रदान करती है। पीवीटीजी पर विशेष ध्यान देते हुए, यह पुस्तक उनके सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ की जटिलताओं पर प्रकाश डालती है, आर्थिक अभाव, सामाजिक बहिष्कार और उनकी अद्वितीय सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण के संदर्भ में इन समूहों के संघर्षों पर प्रकाश डालती है। यह पीवीटीजी की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए डिजाइन की गई सरकारी नीतियों और पहलों की भी जांच करता है, इन हस्तक्षेपों की प्रभावशीलता और सीमाओं में महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। इसके अलावा, पुस्तक समावेशी विकास रणनीतियों को बढ़ावा देने के महत्व पर जोर देती

है जो पीवीटीजी की सांस्कृतिक पहचान का सम्मान करते हुए उन्हें भारत में बड़ी सामाजिक प्रगति में भाग लेने और उससे लाभ उठाने के लिए सशक्त बनाती है।

एस. एन. चौधरी, मनीष मिश्रा (2012)[24] लेखक ने भारत में विभिन्न आदिवासी समुदायों के सामने आने वाली सामाजिक–आर्थिक चुनौतियों पर विशेष रूप से कोरवा जनजाति के विशिष्ट संघर्षों पर ध्यान केंद्रित करने का प्रयास किया है। आदिवासी समूहों के व्यापक ढांचे के भीतर कोरवा जनजाति द्वारा सामना की गई ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सांस्कृतिक विरासत और समकालीन बाधाओं का व्यापक विश्लेषण प्रदान करता है। यह पुस्तक भूमि अधिकार, शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और आर्थिक असमानताओं जैसे मुद्दों की सावधानीपूर्वक जांच करती है, जिसमें समावेशी विकास के लिए कोरवा जनजाति की अनूठी आवश्यकताओं को संबोधित करने के लिए विशेष नीतियों की तत्काल आवश्यकता पर जोर दिया गया है। इसके अलावा, यह कोरवा जनजाति के लचीलेपन और सांस्कृतिक महत्व पर प्रकाश डालता है, आधुनिक चुनौतियों के बीच उनके रीति–रिवाजों और परंपराओं को संरक्षित करने के महत्व पर जोर देता है। शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और आजीविका के अवसरों तक पहुंच में सुधार करते हुए कोरवा विरासत की रक्षा करने वाली पहल की वकालत करते हुए, पुस्तक का उद्देश्य सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील, समावेशी विकास के लिए व्यापक रणनीतियों पर चर्चा को प्रोत्साहित करना है।

ममता झा (2021)[25] लेखिका भारत के झारखंड में कोरवा जनजाति से संबंधित महिलाओं पर ध्यान केंद्रित करते हुए, आदिवासी महिलाओं की शैक्षिक स्थिति में एक अंतर्दृष्टिपूर्ण अन्वेषण प्रदान करती है। लेखिका कोरवा महिलाओं द्वारा उनके सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ में शिक्षा तक पहुँचने में सामना की जाने वाली विशिष्ट चुनौतियों की गहनता से जाँच करती है। इसका उद्देश्य अनुकूलित शैक्षिक नीतियों और हस्तक्षेपों की वकालत करना है जो कोरवा आदिवासी महिलाओं के बीच साक्षरता स्तर और सामाजिक–आर्थिक सशक्तिकरण में सुधार कर सकते हैं। आदिवासी महिलाओं, विशेषकर कोरवा जनजाति की महिलाओं के लिए अद्वितीय बाधाओं और संभावित समाधानों पर प्रकाश डालते हुए, यह पुस्तक झारखंड में नीति निर्माण और सामुदायिक विकास पहल के लिए मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करती है।

अनिल किशोर सिन्हा (2006)[26] लेखक विशेष रूप से छत्तीसगढ़ में कोरवा जनजाति पर ध्यान केंद्रित करते हुए स्वदेशी समुदायों के जीवन, संस्कृति और चुनौतियों का पता लगाता है। यह पुस्तक कोरवा जनजाति के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालती है, उनकी जीवनशैली, सामाजिक–आर्थिक स्थितियों और अद्वितीय सांस्कृतिक प्रथाओं पर प्रकाश डालती है। लेखक की व्यापक जांच विभिन्न प्रकार की कोरवा जनजातियों तक फैली हुई है, जो उनकी विशिष्ट परंपराओं, सामाजिक संरचनाओं और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का खुलासा करती है। लेखक कोरवा जनजाति के अस्तित्व का एक मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करते हैं, जो भूमि अधिकार, आर्थिक असमानताओं और सामाजिक–सांस्कृतिक बाधाओं जैसे मुद्दों पर प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच उनके लचीलेपन को उजागर करते हैं।

ममता ठाकुर (2022)[27] यह पुस्तक, छत्तीसगढ़ के दुर्ग भिलाई में रहने वाले अनुसूचित जाति और जनजाति समुदायों के उत्थान के उद्देश्य से एक गहन पहल है, जो एक मौलिक लक्ष्य निर्धारित करती है। यह इन समुदायों और उनके लिए उपलब्ध ढेरों सरकारी योजनाओं के बीच जागरूकता की खाई को पाटने का प्रयास करता है। इस अध्ययन के माध्यम से, लेखक एक महत्वपूर्ण संबंध स्थापित करना चाहता है, जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि इन हाशिए पर रहने वाले समूहों की विभिन्न सरकारी पहलों तक पहुंच और लाभ हो, जिससे वे अपने लक्ष्यों के करीब पहुंच सकें। जबकि प्रारंभिक दायरा दुर्ग भिलाई क्षेत्र को लक्षित करता है, महत्वाकांक्षा बहुत आगे तक फैली हुई है। लेखक व्यापक विकास की आकांक्षा रखते हुए इस ज्ञान और समर्थन को छत्तीसगढ़ के विस्तार में विस्तारित करने की कल्पना करता है। केवल आर्थिक प्रगति से परे, उद्देश्य इन समुदायों की समग्र विकास को अपनाने की इच्छा से मेल खाता है। इसका लक्ष्य न केवल आर्थिक समृद्धि है, बल्कि उनकी जीवनशैली का संरक्षण और संवर्द्धन, भारत के विकासात्मक आख्यान में अन्य विकसित हो रहे समाजों के साथ उनका एकीकरण और समानता सुनिश्चित करना भी है।

मनोज कुमार श्रीवास्तव, संतोष कुमार सिंह, अंजनी कुमार, राजीव कुमार त्रिपाठी (2023)[28] इस व्यापक कार्य में लेखक के चित्रण के अनुसार, पुस्तक विशेष

रूप से कमजोर जनजातीय समूहों (पीवीटीजी) के लिए तैयार की गई लक्षित जनजातीय विकास योजनाओं को स्पष्ट करती है। पुस्तक में वर्णित महत्वपूर्ण योजनाओं में संरक्षण सह विकास योजना (सीसीडीपी) शामिल है, जिसका उद्देश्य विकास को बढ़ावा देते हुए सांस्कृतिक विरासत और प्राकृतिक संसाधनों दोनों को संरक्षित करना है। इसके अतिरिक्त, जनजातीय उप–योजना (एससीए से टीएसपी) के लिए विशेष केंद्रीय सहायता जनजातीय कल्याण पहल की दिशा में वित्तीय संसाधनों को निर्देशित करने में एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में उभरती है। विशेष विकास पैकेज (एसडीपी) इन कमजोर समूहों के लिए विशेष विकासात्मक हस्तक्षेपों पर ध्यान केंद्रित करता है, जो उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं को संबोधित करता है। इसके अलावा, एकीकृत कार्य योजना (आईएपी) पीवीटीजी क्षेत्रों में समकालिक बहु–क्षेत्रीय विकास के लक्ष्य के साथ एक व्यापक रणनीति के रूप में सामने आती है। इन योजनाओं के गहन विश्लेषण के माध्यम से, पुस्तक का उद्देश्य विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूहों के समग्र विकास और कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए प्रभावी कार्यान्वयन के लिए अंतर्दृष्टि, रणनीति और एक रोडमैप प्रदान करना है।

2. समस्या की कथन

इस शोध का केंद्र बिंदु गुमला जिला के चैनपुर और घाघरा ब्लॉक के संदर्भ में जारी सामाजिक–आर्थिक संघर्षों को उजागर करना और इन हस्तक्षेपों की कमियों को समझना है। यह शोध उन अंतर्निहित मुद्दों पर प्रकाश डालने का प्रयास करता है जो कोरवा जनजाति के लिए बनाई गई विकास योजनाओं की प्रभावशीलता में बाधा डालते हैं। संरक्षण सह विकास योजना (सीसीडीपी), जनजातीय उप–योजना के लिए विशेष केंद्रीय सहायता (एससीए से टीएसपी), विशेष विकास पैकेज (एसडीपी), और एकीकृत कार्य योजना (आईएपी) जैसी कई पहलों के अस्तित्व के बावजूद, वास्तविकताएं कोरवा समुदाय की अक्सर अधूरे वादों और अधूरी जरूरतों को दर्शाता है। मूल रूप से, इस अध्ययन का उद्देश्य कोरवा जनजाति द्वारा अनुभव की जाने वाली स्पष्ट सामाजिक–आर्थिक असमानताओं को उजागर करना है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक अपर्याप्त पहुंच, सीमित स्वास्थ्य देखभाल सुविधाएं, कम

आजीविका के अवसर, निम्न आय स्तर, असमान भूमि स्वामित्व पैटर्न, घटते सांस्कृतिक संरक्षण और अपर्याप्त ढांचागत विकास जैसे कारक समुदाय को लगातार परेशान कर रहे हैं। शोध का उद्देश्य यह बारीकी से जांच करना है कि कथित तौर पर उत्थान के लिए बनाई गई ये विकासात्मक योजनाएं कोरवा जनजाति के सामने आने वाली गंभीर सामाजिक–आर्थिक चुनौतियों का समाधान करने में कैसे कम पड़ गई हैं। शासन की अक्षमताएं, नौकरशाही बाधाएं, सांस्कृतिक असमानताएं, संसाधनों तक सीमित पहुंच और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में सार्थक सामुदायिक भागीदारी की कमी बाधाओं का एक जाल है जो इन विकासात्मक पहलों की सफलता में बाधा डालती है।

3. शोध कार्य का उद्देश्य एवं अभिप्रेरणा

प्रस्तुत शोध के उद्देश्य निम्न हैं–

1. पीवीटीजीएस (पर्टिकुलरली वल्नरेबल ट्राइबल ग्रुप्स) योजनाओं के परिणामस्वरूप कोरवा जनजाति के भीतर सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन का विश्लेषण करना।

2. कोरवा जनजाति में पीवीटीजीएस (पर्टिकुलरली वल्नरेबल ट्राइबल ग्रुप्स) विकास रणनीतियों को लागू करने और अपनाने में सामने आने वाली चुनौतियों और बाधाओं का विश्लेषण करना।

3. कोरवा जनजाति में पीवीटीजीएस (पर्टिकुलरली वल्नरेबल ट्राइबल ग्रुप्स) विकास कार्यक्रमों को लागू करने और उनके प्रभाव को सुविधाजनक बनाने में सरकारी और गैर–सरकारी संस्थाओं की भूमिका का विश्लेषण करना।

4. कोरवा जनजाति के सामाजिक–आर्थिक जीवन को और अधिक लाभ पहुंचाने के लिए पीवीटीजीएस (पर्टिकुलरली वल्नरेबल ट्राइबल ग्रुप्स) विकास कार्यक्रमों की प्रभावकारिता और समावेशिता को बढ़ाने के लिए सुझावों और रणनीतियों की पहचान करना।

अभिप्रेरणा

इस शोध की अभिप्रेरणा नीति निर्माताओं, सरकारी निकायों और विकासात्मक संगठनों को जमीनी स्तर पर उनके हस्तक्षेपों के वास्तविक दुनिया के प्रभावों के बारे में सूचित करने की क्षमता में निहित है। यह अध्ययन पीवीटीजीएस कार्यक्रमों की समावेशिता और प्रभावशीलता को बढ़ाने के लिए कार्रवाई योग्य सिफारिशें प्रदान करते हुए सिद्धांत और व्यवहार के बीच की खाई को पाटने की आकांक्षा रखता है। अंततः, इन योजनाओं से जुड़ी जटिलताओं और कोरवा जनजाति के सामाजिक–आर्थिक परिदृश्य पर उनके प्रभाव को उजागर करके, इस शोध का उद्देश्य कमजोर जनजाति समुदायों के समग्र सुधार के उद्देश्य से अधिक लक्षित, टिकाऊ और प्रभावशाली नीतियों के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देना है।

4. **उपकल्पना**

1. पीवीटीजीएस (पर्टिकुलरली वल्नरेबल ट्राइबल ग्रुप्स) योजनाओं के कार्यान्वयन से कोरवा जनजाति के भीतर महत्वपूर्ण सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन हुए हैं।
2. कोरवा जनजाति के भीतर पीवीटीजीएस (पर्टिकुलरली वल्नरेबल ट्राइबल ग्रुप्स) विकास रणनीतियों के सफल कार्यान्वयन और अपनाने में विभिन्न चुनौतियाँ और बाधाएँ मौजूद हैं।
3. सरकारी और गैर–सरकारी संस्थान पीवीटीजीएस (पर्टिकुलरली वल्नरेबल ट्राइबल ग्रुप्स) विकास कार्यक्रमों को लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
4. उन्नत रणनीतियाँ एवं सुझाव से कोरवा जनजाति लाभान्वित होगी।

5. शोध की रूपरेखा

एक अच्छी तरह से परिभाषित अनुसंधान पद्धति का महत्व जांच को संरचना और सुसंगतता प्रदान करने की क्षमता में निहित है। यह एक दिशासूचक के रूप में कार्य करता है, जो व्यवस्थित तरीके से तथ्य संग्रह, विश्लेषण और व्याख्या की प्रक्रिया के माध्यम से शोधकर्ता का मार्गदर्शन प्रदान करता है। सावधानीपूर्वक की गई पद्धति यह सुनिश्चित करती है कि अनुसंधान उद्देश्यों को प्रभावी ढंग से संबोधित किया गया है और एकत्र किया गया तथ्य विश्वसनीय और वैध है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग किया जाएगा। सामाजिक विज्ञान में वैज्ञानिक पद्धति में सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करने के लिए व्यवस्थित अवलोकन, परिकल्पना निर्माण, तथ्य संग्रह, विश्लेषण और व्याख्या शामिल है। यह निष्कर्ष निकालने एवं मानव व्यवहार, सामाजिक रुझानों और जटिल सामाजिक मुद्दों को समझने में योगदान देने के लिए अनुभवजन्य साक्ष्य, कठोर कार्यप्रणाली और तार्किक तर्क पर जोर देता है[29]।

प्रस्तुत शोध में अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप का प्रयोग किया जाएगा। सामाजिक विज्ञान में अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप में प्रारंभिक अंतर्दृष्टि और समझ हासिल करने के लिए नए या समझे गए विषयों की जांच करना शामिल है। इसका उद्देश्य अपरिचित क्षेत्रों का पता लगाना, परिकल्पना उत्पन्न करना या रिश्तों की पहचान करना, साहित्य समीक्षा, साक्षात्कार या अवलोकन जैसे तरीकों का उपयोग करके अधिक गहन शोध के लिए एक प्रारंभिक बिंदु प्रदान करना है।

निदर्शन का चयन एवं आकार

सामाजिक विज्ञान शोध में निदर्शन, अध्ययन उद्देश्यों के लिए बड़ी आबादी से व्यक्तियों या तत्वों के एक उपसमूह का चयन करना शामिल है। यह आवश्यक है क्योंकि समय, संसाधन की कमी या जनसंख्या के विशाल आकार के कारण संपूर्ण जनसंख्या का अध्ययन करना अक्सर अव्यावहारिक या असंभव हो जाता है। निदर्शन शोधकर्ताओं को बड़े समूह की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करते हुए, समग्र रूप से जनसंख्या के बारे में सामान्यीकरण करने और निष्कर्ष निकालने के दौरान कुशलतापूर्वक तथ्य इकट्ठा करने की अनुमति देता है।

प्रस्तुत शोध के अनुरूप कोरवा जनजाति के 200 उत्तरदाताओं का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के द्वारा किया जाएगा। उद्देश्यपूर्ण निदर्शन, में शोध उद्देश्यों से संबंधित विशिष्ट मानदंडों के आधार पर प्रतिभागियों का चयन करना होता है।

अध्ययन क्षेत्र का चुनाव

प्रस्तुत शोध के लिए अध्ययन क्षेत्र के रूप में गुमला जिला का चयन किया गया है। इस क्षेत्र को अध्ययन क्षेत्र के रूप में चयन करने का प्रमुख उद्देश्य यहाँ की जनजातीय पृष्ठभूमि है। मेरे शोध के अनुरूप यहाँ कोरवा जनजाति की बहुलता है। झारखंड राज्य का यह जिला गुमला अपने हरे–भरे जंगलों, पहाड़ियों और नदियों के लिए जाना जाता है। इसकी स्थापना 18 मई 1983 को हुई थी, जो पहले रांची का एक उप–विभाजन था। 22′ 35″ से 23′ 33″ उत्तरी अक्षांश और 84′ 40″ से 85′ 1″ पूर्वी देशांतर के बीच स्थित, मुंडारी भाषा में 'गुमला' नाम चावल प्रसंस्करण से संबंधित है, जबकि 'गौ–मेला' एक पशु मेले को संदर्भित करता है, गुमला शहर में साप्ताहिक आयोजित किया जाता है। प्रारंभ में इसमें दो उप–मंडल, गुमला और सिमडेगा शामिल थे, सिमडेगा 2001 में एक अलग जिला बन गया, जिससे गुमला में तीन उप–मंडल बन गए: गुमला, चौनपुर और बसिया, जो लगभग 5327 वर्ग किमी के क्षेत्र में फैला हुआ है। गुमला जिले की आबादी लगभग 706,489 है, जिसमें आदिवासी समुदायों का वर्चस्व है, जो कुल आबादी का 68% है, जो इसे एक अनुसूचित जनजाति क्षेत्र के रूप में योग्य बनाता है।

6. आंकड़ों के स्रोत एवं तथ्यों के संग्रह हेतु अपनाये गए उपकरण

सामाजिक विज्ञान शोध में तथ्य संग्रह तकनीकों के लिए उपकरणों का महत्व अनुभवजन्य जानकारी और अंतर्दृष्टि इकट्ठा करने के लिए आवश्यक उपकरणों के रूप में निहित है। ये उपकरण शोधकर्ताओं को तथ्य को व्यवस्थित रूप से एकत्र करने, व्यवस्थित करने और विश्लेषण करने की अनुमति देते हैं, जिससे किसी आबादी या समुदाय के भीतर जटिल सामाजिक घटनाओं, व्यवहारों या दृष्टिकोणों को समझने में सहायता मिलती है।

तथ्यों का संकलन प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों के माध्यम से किया जाएगा। कोरवा जनजातीय परिवारों के अध्ययन के लिए प्राथमिक तथ्यों का संकलन साक्षात्कार एवं अवलोकन विधि के माध्यम से किया जाएगा। साक्षात्कार के अंतर्गत साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से उत्तरदाताओं से प्रत्यक्ष रूप से प्रश्न पूछकर तथ्यों का संकलन किया जाएगा। अवलोकन में अर्धसहभागी अवलोकन विधि का प्रयोग किया जाएगा। द्वितीयक स्रोतों में तथ्यों का संकलन पुस्तकों, शोध लेखों, सेन्सस, लेखों, राजकीय रिपोर्ट्स, राष्ट्रीय रिपोर्ट्स एवं इंटरनेट के माध्यम से किया जाएगा।

7. आंकड़ों का विश्लेषण

तथ्य एवं आंकड़ों के विश्लेषण के लिए तथ्य को व्यवस्थित करना, परिष्कृत करना, वैधता, सटीकता और स्थिरता सुनिश्चित करना शामिल है। इसके बाद, तथ्य विश्लेषण संसाधित तथ्य की व्याख्या करने, पैटर्न या संबंधों को प्रकट करने के लिए सांख्यिकीय या गुणात्मक तकनीकों को नियोजित करना होगा। यह विश्लेषण निष्कर्षों की व्याख्या की ओर ले जाता है, शोधकर्ताओं को निष्कर्ष निकालने, अनुमान लगाने और अनुसंधान प्रश्नों का समाधान करने में सक्षम बनाता है।

8. शोध अध्ययन का महत्व

वर्तमान शोध अध्ययन काफी महत्व रखता है क्योंकि यह गुमला जिले के चौनपुर और घाघरा ब्लॉक के भीतर कोरवा जनजाति की सामाजिक–आर्थिक जटिलताओं पर प्रकाश डालता है। इस उपेक्षित जनजातीय समूह पर ध्यान केंद्रित करके, स्थानीय संदर्भ में कोरवा जनजाति की चुनौतियों, विकास और विशिष्ट आवश्यकताओं के संबंध में एक महत्वपूर्ण ज्ञान प्राप्त करना है। इसके अतिरिक्त, यह शोध कोरवा जनजाति द्वारा सामना किए जाने वाले अद्वितीय मुद्दों पर प्रकाश डालने और बेहतर सामाजिक–आर्थिक स्थितियों, संसाधनों और अवसरों तक समान पहुंच की वकालत करने के लिए एक माध्यम के रूप में काम कर सकता है। अंततः, अध्ययन के नतीजे गुमला जिले में कोरवा जनजाति के जीवन को बेहतर बनाने के उद्देश्य से अकादमिक समझ और व्यावहारिक पहल में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

9. वर्तमान समस्या के संदर्भ में समाज में इसकी प्रासंगिकता

वर्तमान शोध की प्रासंगिकता कोरवा जनजाति जैसे उपेक्षित रहने वाले जनजातीय समुदायों द्वारा सामना की जाने वाली लगातार सामाजिक–आर्थिक असमानताओं को समझने और संबोधित करने पर केंद्रित है। वर्तमान संदर्भ में, जहां समावेशिता और समानता आवश्यक सामाजिक लक्ष्य हैं, यह अध्ययन जनजातीय आबादी की सामाजिक–आर्थिक प्रगति में बाधा डालने वाले विशिष्ट मुद्दों पर प्रकाश डालने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। गुमला जिले के चौनपुर और घाघरा ब्लॉक में कोरवा जनजाति के भीतर चुनौतियों और अवसरों की जांच करके, यह शोध कार्रवाई योग्य अंतर्दृष्टि प्रदान कर सकता है जो व्यापक सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप है। कोरवा जनजाति के सामाजिक–आर्थिक जीवन पर विकासात्मक हस्तक्षेपों के प्रभाव को समझना नीति निर्माताओं, समाज सुधारकों और हितधारकों को अधिक प्रभावी और सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक रणनीति तैयार करने के लिए मार्गदर्शन करने के लिए प्रासंगिक है।

10. वर्तमान ज्ञान में योगदान

वर्तमान ज्ञान में इस शोध का योगदान कोरवा जनजाति के भीतर सामाजिक–आर्थिक गतिशीलता की केंद्रित खोज में निहित है, खासकर गुमला जिले के चौनपुर और घाघरा ब्लॉक के संदर्भ में। एक व्यापक समाजशास्त्रीय अध्ययन करके, यह शोध उपेक्षित जनजातीय समुदायों से संबंधित ज्ञान के वर्तमान भंडार को बढ़ाता है। इसका उद्देश्य अद्वितीय चुनौतियों, विकासात्मक हस्तक्षेपों और कोरवा जनजाति के सामाजिक–आर्थिक ताने–बाने पर परिणामी प्रभाव के बारे में विस्तृत जानकारी प्रदान करके समझ में अंतराल को भरना है। अध्ययन के निष्कर्ष और विश्लेषण मौजूदा साहित्य में गहराई जोड़ते हैं, कोरवा जनजाति के सामाजिक और आर्थिक जीवन को प्रभावित करने वाले कारकों पर सूक्ष्म दृष्टिकोण पेश करते हैं, इस प्रकार समाजशास्त्र, स्वदेशी अध्ययन और विकासात्मक अनुसंधान के क्षेत्र में मूल्यवान अनुभवजन्य साक्ष्य का योगदान देते हैं।

11. भविष्य कार्य

इस शोध से उत्पन्न भविष्य के कार्य गुमला जिले के चौनपुर और घाघरा ब्लॉक के निर्दिष्ट क्षेत्रों में कोरवा जनजाति के सामाजिक–आर्थिक पहलुओं की समझ को और समृद्ध करने के लिए कई रास्ते तलाश सकते हैं। सबसे पहले, एक विस्तारित अवधि में कोरवा जनजाति की सामाजिक और आर्थिक स्थितियों पर विभिन्न विकासात्मक योजनाओं और हस्तक्षेपों के निरंतर प्रभाव को जानने के लिए अनुदैर्ध्य अध्ययन आयोजित करने से इन पहलों की प्रभावशीलता और दीर्घकालिक स्थिरता में अंतर्दृष्टि मिल सकती है। इसके अतिरिक्त, जनजाति के भीतर सांस्कृतिक संरक्षण और स्वदेशी ज्ञान की भूमिका की जांच करना, साथ ही उनकी सामाजिक–आर्थिक गतिशीलता को आकार देने में परंपरा और आधुनिकता के बीच परस्पर क्रिया की खोज करना, भविष्य के अनुसंधान के लिए एक आशाजनक क्षेत्र हो सकता है। झारखंड या अन्य राज्यों के विभिन्न जनजातीय समुदायों या क्षेत्रों के बीच तुलनात्मक अध्ययन से विभिन्न स्वदेशी समूहों की सामाजिक–आर्थिक स्थितियों में मूल्यवान तुलनात्मक अंतर्दृष्टि प्राप्त हो सकती है।

12. संभावित अध्यायीकरण

प्रथम अध्याय	–	भूमिका
द्वितीय अध्याय	–	उपलब्ध साहित्यों का पुनरावलोकन
तृतीय अध्याय	–	अध्ययन क्षेत्र एवं शोध विधियाँ
चतुर्थ अध्याय	–	तथ्यों का संकलन एवं वर्गीकरण
पंचम अध्याय	–	कोरवा जनजातियों के सामाजिक–आर्थिक जीवन पर पीवीटीजीएस विकास योजनाओं का प्रभाव
षष्ठम अध्याय	–	निष्कर्ष एवं सुझाव
		परिशिष्ट
		सन्दर्भ सूची

साक्षात्कार अनुसूची

फोटोग्राफ्स

संदर्भ सूची

1. सिंह शीलवंत, सारिका (2022), भारतीय कला एवं संस्कृति, प्रभात प्रकाशन, न्यू दिल्ली, पृ.सं.–31–32

2. उप्रेति हरिश्चन्द्र (2000), भारतीय जनजातियाँः संरचना एवम् विकास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, राजस्थान, पृ.सं.–25

3. मिश्रा मनीषा (2012), आदिवासी विकासः उपलब्धियाँ एवं चुनौतियाँ, कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, न्यू दिल्ली, पृ.सं.–72

4. ठाकुर ममता (2022), अनुसूचित जाति जनजाति की वित्तीय योजना एवं उपाय, बुक्सक्लिनिक पब्लिशिंग, छत्तीसगढ़, पृ.सं.–10

5. देवगांवकर शशिशेखर गोपाल (1994), ट्राइबल एडमिनिस्ट्रेशन एंड डेवलपमेंट, कांसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, न्यू दिल्ली, पृ.सं.–14

6. पूर्वोक्त

7. सिंह जे. पी. (2016), आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, पीएचआई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, न्यू दिल्ली, पृ.सं.–232

8. विद्यार्थी, ललिता प्रसाद राय बिनय कुमार (1977), द ट्राइबल कल्चर ऑफ इंडिया, कांसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, न्यू दिल्ली, पृ.सं. –66

9. शर्मा रामनाथ, शर्मा राजेंद्र कुमार (2004), मानवशास्त्र, अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (पी) लिमिटेड, न्यू दिल्ली, पृ.सं.–209–211

10. https://ncst.nic.in/

11. सिन्हा अनिल किशोर (2006), छत्तीसगढ़ की आदिम जनजातियाँ, नोर्थन बुक सेंटर, न्यू दिल्ली, पृ.सं.–322–327

12. https://pib.gov.in/Pressreleaseshare.aspx?PRID=1577166

13. देबनाथ डी., सक्सेना मनीषा, शर्मा डी. के. (2022), डॉ. बी. आर. अम्बेडकरः एजुकेशन इक्वलिटी एंड एम्पावरमेंट, कृष्णा पब्लिकेशन हाउस, गुजरात, पृ.सं.–124

14. पटेल महेंद्र लाल (1994), डेवलपमेंट डूआलिस्म ऑफ प्रिमिटिव ट्राइब्स, एम डी पब्लिकेशन्स, न्यू दिल्ली, पृ.सं.–31

15. कुमार गजेंद्र (2022), बैगाः सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक इतिहास, सारिका पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, पृ.सं.–16

16. https://pib.gov.in/

17. https://www.trijharkhand.in/en/korwa

18. उप्रेति हरिश्चन्द्र (2000), भारतीय जनजातियाँः संरचना एवम् विकास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, राजस्थान, पृ.सं. –20–25

19. दुबे गिरिजा प्रसाद (2010), भारतीय जनजाति, विट्ठल पब्लिकेशन्स, महाराष्ट्, पृ.सं.–10–17

20. प्रताप अजय, परांजपे बिंदा, श्याम घन (2023), भारत का पर्यावरण और जनजातीय इतिहास, राजमंगल प्रकाशन, उत्तर प्रदेश, पृ.सं.–09–12

21. मीना जनक सिंह, मीना कुलदीप सिंह (2018), भारत के आदिवासीः चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ, राजमंगल प्रकाशन, उत्तर प्रदेश, पृ.सं.–49–55

22. श्रीवास्तव अर्जुन कुमार (2020), अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के कर्तव्य और अधिकार (एक चिन्तन), लक्ष्मी प्रकाशन, लखनऊ, पृ.सं.–17–29

23. शर्मा विजय प्रकाश (2022), एंथ्रोपोलॉजी इन इंडिया, संकल्प प्रकाशन, छत्तीसगढ़, पृ.सं.–43–59

24. मिश्रा मनीष (2012), पंचायत और आदिवासी नेतृत्व, क्वालिटी पब्लिकेशन, उत्तर प्रदेश, पृ.सं.–31–37

25. झा ममता (2021), झारखंड में आदिवासी महिलाओं की साक्षरता, नए पल्लव, पटना, पृ.सं.–07–11

26. सिन्हा अनिल किशोर (2006), छत्तीसगढ़ की आदिम जनजातियां, नॉर्दन बुक सेंटर, न्यू दिल्ली, पृ.सं.–70–89

27. ठाकुर ममता (2022), अनुसूचित जाति जनजाति की वित्तीय योजना एवं उपाय, बुक्सक्लिनिक प्रकाशन, छत्तीसगढ़, पृ.सं. –15–21

28. श्रीवास्तव मनोज कुमार, सिंह संतोष कुमार, कुमार अंजनी, त्रिपाठी राजीव कुमार (2022), भारत में समाजः संरचना, संगठन और परिवर्तन, ठाकुर पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, उत्तर प्रदेश, पृ.सं.–79–91

29. बघेल डी. एस. (2022), सामाजिक अनुसंधान, एसबीपीडी प्रकाशन, न्यू दिल्ली, पृ.सं.–04–07